ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हो शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट-घट में डोले।
एक राम निर्गुन से न्यारा, एक राम का सकल पसारा।।

वर्ष 58 मई–जून 2012 अंक 3

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय -सूची

(मई-जून 2012)

क्रमांक			पृष्टांक
1.	शिकस्ता की प्रार्थना	प्रार्थना	01
2.	रामायण का आध्यात्मिक	दादागुरु की देन	02
3.	गुरुदेव के पत्रोपदेश	प्रवचन गुरुदेव	07
4.	असली परिवर्तन	अध्यक्षीय सदुपदेश	10
5.	श्री जयनारायण गौतम	श्रद्धांजलि	14
6.	संतोपदेश	प्रेम और विरह	15
7.	भक्ति हर प्रकार की	संतमत में भक्ति	18

राम ॐ संदेश

भक्ति ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

डा. करतार सिंह, अध्यक्ष आचार्य

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

वर्ष 58 ✡ द्विमासिक पत्रिका ✡ मई–जून 2012 ✡ अंक 03

शिकस्ता की प्रार्थना

सर भी अपना, आस्ताने यार के, काबिल नहीं।
हैफ़ यह आँखे मेरी दीदार के काबिल नहीं।।
लाश मेरी उनके कूँचे में भला क्यूंकर हो दफ़न।
उस्तखां तक भी सगे दिलदार के क़ाबिल नहीं।।
सर भी अपना आस्ताने.....
इल्म पढ़-पढ़ कर नमाज़ें क्यूं हों मजदूरे बहिश्त,
यार कहता है कि तू.....बेगार के काबिल नहीं।।
सर भी अपना आस्ताने.....
हुक्म हो, तो नज़र कर दूँ, यह दिले पुरदाग को,
मुफ़लिसों के पास कुछ सरकार के क़ाबिल नहीं।।
सर भी अपना आस्ताने.....

दादागुरु की देन

रामायण का आध्यात्मिक निरूपण

दशरथ रूपी शरीर ने जिस्मानी भोग विलास कर लिए अब उम्र ज्यादा हो गई – उससे राम–लक्ष्मण, भरत–शत्रुघ्न चार औलाद (मन–बुद्धि अहंकार और चित्त) पैदा हुए। ज़िन्दगी के तजुरबे में इनका पैदा होना लाज़िमी (अनिवार्य) था। **विश्वामित्र** रूपी नेकी की वृत्ति ने उसके साथ रहकर ताड़का और मारीच (नफ़सानियत के जज़बात को यज्ञ में यानी दिल के ग़ौर व फ़िक्र के साथ दूर हटाकर इसी मन को शिव के धनुष – यज्ञशाला यानी शिव नेत्र के मुकाम में पहुँचकर शिव का धनुष तुड़वा दिया और सीता रूपी सत की वृत्ति उसको दिलाकर **परशुराम** रूपी उथली भक्ति को परे हटाया और सूक्ष्म भक्ति का ज्ञान बख़्शा। मन रूपी **राम** उस सती **सीता** के साथ दशरथ (यानी शरीर) के महल में रहने लगे। **दशरथ** (शरीर) चाहता है कि राम से जिस्मानी व्यवहार का काम लें – मगर वो (राम) यह देवकारज करना चाहते थे – यानी उनको अज्ञान रूपी **रावण** के नाश करने का ख़्याल था। देवी–देवता जो मन की शुद्ध और शुभ वृत्तियाँ हैं – उनमें से एक **सरस्वती, मंथरा** की जुबान पर आ बैठी जिसने इस शरीर की तामसी वृत्ति **कैकई** को बरग़लाया।

मंथरा – संस्कृत लफ़्ज माद्दा, मंथर, ख़्वाह, मंथ से निकला है जिसके मानी भड़कने के हैं। यह तामस की भड़काने वाली वृत्ति है। जब तक तमोगुण को हरकत नहीं दी जाती – तब तक किसी हालत में भी यह मन कर्म करने के क़ाबिल नहीं होता। हरकत यहाँ से चलती है। इसलिए जब शरीर की तमोगुणी शक्ति को भड़काया गया – उसने सोचा कि राम रूपी मन को और काम करना चाहिए। इसी शरीर के दुखड़े में पड़े रहने से क्या काम होगा। इस वजह से तम के उभारने के लिए तपस्वी तप करते हैं। इसका उभार **सरस्वती** से होता है।

सरस्वती – संस्कृत लफ़्ज स और रस से बना है यानी जो रस के साथ होता है सरस्वती है – यह ज़बान की कुव्वत कलामिया है – जो देवताओं में श्रद्धा की देवी है – जब आदमी कोई बात सुनता है – तब ही उसके

दिल में **मंथरा** रूपी टेढ़ी वृत्ति पैदा होकर उसको भड़का देती है। सत्संग में संतों के वचन सुनने से यही वृत्ति पहले पैदा होती है जो मन को भड़काती है – शरीर के तमोगुण हिस्से को हरकत देती है और उसको चुपचाप नहीं बैठने देती – चूँकि उसमें ख़ास क़िस्म की एकसोई (एकाग्रता) होती है – इसलिए वह कानी कही गई है। यह सबको एक आँख से देखती है। जब तम जोश में आया – उसने शरीर रूपी **दशरथ** को पकड़कर हिलाया और उससे कहा कि राज **भरत** को दे दो और राम को चौदह वर्ष का बनवास दो।

भरत बुद्धि की वृत्ति है – मतलब यह है कि दशरथ बुद्धि से काम लें और मन को ज्ञान के काम के हवाले करें और मन को चौदह वर्ष बन में रहकर तप करके पहिले काबू कर लें। **चौदह वर्ष का बनवास** – चौदह इन्द्रियों के समूह पर फ़तह पाना हैं। इन्द्रियाँ चौदह ही हैं – पाँच कर्म पाँच ज्ञान और चार अंतःकरण। जब तक तप करके इनकी वासनाओं को मेट कर कोई शख़्स बलवान नहीं हो जाता तब तक अज्ञान की जड़ नहीं उधेड़ सकता। यहाँ तक कि मन को ख़ुद अपने आंतरिक भाव को दबा देना पड़ता है। अगर वह ख़ुद अपनी हस्ती का अभिमानी रहे – तो फिर कोई काम उससे न हो सकेगा।

दशरथ यानी शरीर ने उसको पसन्द नहीं किया। जिस्म तो ज़िस्मानी राहत का आदी है – इसलिए उसकी हालत बदल गई और राम रूपी ब्रह्म मन, माँ और बाप का हुक्म पाकर अपनी अहंकार रूपी वृत्ति **लक्ष्मण** और दृढ़ सत रूपी वृत्ति **सीता** को साथ लिया – क्योंकि असल में इन्हीं दोनों चतुरों की अज्ञान से मुकाबला करने के लिए ज़रूरत होती है। इनके जाते ही **अयोध्या** रूपी जिस्म बेरौनक हो गया – दश इन्द्रियों का दशरथ धराशायी हो गया। **सुमन्त** उसको बन की तरफ़ ले गए।

सुमन्त – संस्कृत लफ़्ज़ 'सु' माने अच्छाई और नेकी की तरफ़ झुके रहने वाली वृत्ति है। इसका साथ सिर्फ़ प्रयागराज के इधर तक रहता है – फिर वापिस जिस्म की तरफ़ लौट जाती है – जहाँ उसकी हर वक्त ज़रूरत है।

प्रयागराज – इस तीरथ का भाव संतों के सत्संग और फ़कीरों की सौहबत से है – अब इसी प्रयाग का अर्थ भी सुनो – 'प्र' के मानी है ख़ास और याग के मानी है यज्ञ। प्रयाग का अर्थ सत्संग है। यहीं पर यज्ञ की ज़रूरत बाकी नहीं रहती। इस प्रयागराज में तीन नदियाँ **गंगा,**

यमुना, सरस्वती बहती हैं। **गंगा** भक्ति का, **यमुना,** कर्म का और **सरस्वती** ज्ञान का प्रवाह हैं। **प्रयाग** वही हैं जहाँ कर्म उपासना और ज्ञान मिलते हैं वही संतों का सत्संग है, जहाँ इनमें से एक का भी निरादर नहीं होता – बल्कि साथ–साथ तीनों का फल प्राप्त होता है और इंसान सत्संग में आकर असलियत को समझ जाता है। यही इसका फल है।

इस तीरथ में **अक्षयवट** नाम का पेड़ है जो अटल विश्वास है। बिना सत्संग में आए हुए इस विश्वास का पता नहीं लगता। यहाँ उसकी मज़बूती बढ़ जाती है। जिन्होंने सत्संग में आकर विश्वास को मांझा नहीं, वह कच्चे रहते हैं और जहाँ किसी प्रचारक की दलील सुनी फ़ौरन अपने विश्वास से हट गए।

गंगा – संस्कृत माद्दा 'गम' से निकला है जिसके मानी चलते रहने के हैं जब तक कि मंजिल यानी सागर तक न पहुँचे। यह भक्ति का रूप है।

यमुना – संस्कृत लफ़्ज **'यम'** ठहरने से निकला है। यह कर्म है – कर्म करता हुआ आदमी मुक्ति की तरफ़ नहीं जाता, संसार में ही ठहरा रहता है।

सरस्वती – का अर्थ पहिले बता दिया गया है। यह रस देने वाली ज्ञान और आनंद देने वाली है। सिर्फ़ सत्संग रूपी **प्रयाग** में इन तीनों का संगम यानी मेल होता है और इसमें नहाकर जन्म सफल करके कर्म उपासना और ज्ञान की समझ कराके आगे की तरफ़ चलना पड़ता है।

भरद्वाज – संस्कृत लफ़्ज 'भरत' मानी पकड़ना और 'दाज' मानी जिसने बाजू पकड़ रखा है, यह भरद्वाज हैं यह बृहस्पति यानी देवताओं के गुरु का पुत्र कहलाता हुआ सत्संग का अधिष्ठाता पीर व दस्तगीर जीव का हाथ पकड़ने वाला है। यह सत्संग का देव ऋषि है। अब भी उसी रवायत से गुरु को बाँह गहने वाला हाथ पकड़ने वाला दस्तगीर या गुरु कहते हैं।

चूँकि यह सिलसिला सनातन काल से चला आता है इसलिए सूफ़ियों में पीर को भी बैत करने –हाथ देने और दस्तगीर कहने का रिवाज चला आता है इसका सहारा लेना ज़रूरी है – वर्ना फिर सत्संग बेसहारा ही रहता है।

गोह – संस्कृत लफ़्ज गोह यानी 'छिपाने' से निकला है।

निषाद – संस्कृत लफ़्ज 'नि' माने पहिले और 'षद' माने चलने से

निकला है। (नि) सरगम का पहिला मगर असल में आख़िरी स्वर है – 'हुवल अव्वल – हुवल आख़िर।' निषाद के मानी मछली पकड़ने वाले मल्लाह से है। यह भी मन की एक वृत्ति है जो सत्संग के पहिले और सत्संग के पीछे तक रहती है। गुप्त रीति से जो सत्संग का राज़ और उसका पता मालूम होता जाता है। जो उसी के भेद को फ़ाश करते, खोलते रहते है – उनको उसका पूरा फल नहीं मिलता क्योंकि वह अपनी सिद्धि को खोकर कमज़ोर होते जाते हैं। निषाद का केवट की मदद से गंगा पार होने का मतलब **जिस्मानी अवध** की सरहद से पार होना है।

केवट यानी मल्लाह – संस्कृत लफ़्ज केवट माने ख़िदमत (सेवा) करने से निकला है। सेवा ही जिस्म की हद से पार करती है। यह भी मन का एक अंग है जो सत्संग में पहुँचाने में मददगार होता हैं जब तक सेवा भाव न हो – कभी फ़कीरों की ख़िदमत में कोई नहीं जा सकता है। यहाँ तक सत्संग में पहुँचने का राज़ (रहस्य) बतलाया गया।

भरद्वाज ने रहनुमाई का सामान इकट्ठा कर दिया – गुरु से हिदायत (शिक्षा) मिल गई। अब ब्रह्माण्डी मन रूपी **राम** चले – कर्म की यमुना को बिल्कुल पार कर गए। अब जिस्मानी कर्मो से ताल्लुक (नाता) छूटा।

नर–नारी है प्रेम और भक्ति की वृत्तियाँ जो बीच–बीच में मिलती गई और राह बताती रही हैं। वही नर–नारी राम को मदद दे देकर आगे का रास्ता दिखाते रहे है। राम मंजिलें तय करते हुए बाल्मीकि के आश्रम में आए।

बाल्मीकि – संस्कृत लफ़्ज बाल्मीक से निकला है जिसका अर्थ है चिंउटी का बिल या सुराख। यह मन की गुफा है। अब इन लफ़्जों पर ग़ौर करो जो बाल्मीकि ऋषि ने कहे हैं यहाँ आकर मन में ख़ुद सोचने–विचारने की ताकत आ जाती है। इससे चित्रकूट का पता मिला जहाँ मन्दाकिनी बहती है।

चित्रकूट – चित्र कहते है 'नक्ष' सूरत या तस्वीर को, और 'कूट' कहते हैं ज़ख़ीरा, अम्बार और इकट्ठा की हुई वृत्तियों के भण्डार को। यह इस मन का ऊँचा स्थान है जहाँ आँखों से देखे हुए प्रभाव – कानों से सुने हुए ख़्यालात, दिल के सोचे हुए ज़ज्बात (भाव) और इन्द्रियों के इकट्ठा किए हुए महसूसात (अनुभूतियों) का अम्बार लगा रहता है, जिसकी वजह से इन्सान ख़्वाब में या जागते हुए भी उचित अनुचित काम करते

रहते है। यह मन का ऊँचा स्थान है जहाँ मन्दाकिनी नदी का प्रवाह बहता है।

मन्दाकिनी – 'मन' (जानना) 'दाक' या 'दा' यानी बहकाने वाली नदी का प्रवाह इसी चित्रकूट से नदी की शक़्ल में ख़्यालात रहते हैं यहाँ ऊपरी मन और ख्याली मन पर उसको फ़तह पाने का मौका हाथ आएगा और असली ग़ौर व फिक्र (ध्यान व सुमिरन) की वृत्तियाँ – जो अधखिली हालत में पड़ी हुई है – उनका रूप देखा जायेगा। यहाँ आकर लड़ाई–झगड़े से काम नहीं होता, सिर्फ़ प्रेम से इनको अपना बना लेना होता है। इस वजह से राम से तमाम हैवानी और नफ़सानी ज़ज़्बात (आसुरी और मायावी संस्कार भाव) जो भील, किराट और कोल वगैरह की शक्ल में आते है, वही सब जब राम से मिलते हैं तो पहिले जो लुटेरे थे – अब राम के प्रेमी बन जाते हैं।

भील – संस्कृत लफ़्ज 'भीरु' डरपोक से निकला है। यह भय का भाव है।

किरात – संस्कृत लफ़्ज कृ से निकला है है माने यह चंचलपने का ज़ज़्बा (भाव) रखने वाला वहशी (पशु जैसा) है।

कोल – संस्कृत लफ़्ज कोल – इकट्ठा करने वाले से निकला है। यह भी मन की वृत्ति का एक ज़ज़्बा है – जो ख़्यालात के असरात (विचारों के प्रभाव) को ले लेकर मन के ख़ज़ाने में रखता जाता है।

गोण्ड – संस्कृत 'माद्दा गरणी' – घेरे से निकला है। यह भी मन की वृत्ति का एक ज़ज़्बा है जो ख़्याल को घेर कर अपने अन्दर रख लेता है।

मतलब यह है कि इन जंगली जातियों के रूप में जितने काम, क्रोध, लोभ, मोह बगैरह हैं – चित्रकूट में पहुँचते ही राम के सेवक हो जाते हैं। यहाँ आकर तमाम ग़ज़ब ढ़ाने वाली वृत्तियाँ उनके ताबे (अधीन) हो जाती है जैसे सरकस के खिलाड़ी शेर, चीते, रीछ, हाथी, बन्दर, वगैरह को सिखा–पढ़ाकर अपना मन चाहा काम करा लेते हैं। (पूज्य लालाजी साहब ने इसी तरह रामायण की कथा में आगे की घटनाओं एवं पात्रों का आध यात्मिक रहस्य भेद भी बताया है)

● ● ●

प्रवचन गुरुदेव

गुरुदेव के पत्रोपदेश

(1)

प्रिय भाई.....,

आपके दो खत आये। 1 मार्च व 30 मार्च को। जवाब देर से दे रहा हूँ। उसकी वजह ये है कि गोरखपुर से आने के बाद मेरी तबियत खराब हो गई। अब मैं पहले से अच्छा हूँ। परमात्मा की तुम पर बड़ी कृपा है कि तुमको इतनी जल्दी इतना फायदा हुआ वरना इसमें वर्षो लग जाते हैं।

मन की तीन हालतें हैं। एक हालत में बहुत से ख़्यालात आते हैं जिसमें यह बहुत दुखी रहता है। दूसरी हालत में कोई ख़्याल नहीं रहता है जिसमें यह सो जाता है। तीसरी हालत में एक ख्याल रहता है। जिसमें होश भी रहता है और आनंद आता है। मन को उन दो हालतों से हटाकर तीसरी हालत पर लाना है। यही अभ्यास है। सफलता देर से मिलती है। गुरु का ध्यान अन्य ख्यालों को हटाने के लिए है। अगर काम में लग जाने पर गुरु का ध्यान हट जाता है तो कोई हर्ज नहीं है जब थोड़ी देर देर के लिए पर्दा हट जाता है, प्रकाश दिखाई देने लगता है। जब तक ख्वाहिशात का पर्दा रहेगा, ऐसे ही होता रहेगा। मैं तुमसे क्यों नाराज होने लगा। मेरा इरादा फतेहगढ़ जाने का नहीं है बाबूजी से नमस्ते कह देना और बच्चों को प्यार।

शुभ चिन्तक,

श्रीकृष्ण

(2)

सिकन्दराबाद

प्रिय भाई नमस्ते,

आपकी चिट्ठी 27 अप्रैल को मिली। आपका अभ्यास ठीक चल

रहा है। उसे ही करते रहिए। असल में ध्यान अपने निज रूप का ही किया जाता है। जो ईश्वर है और उसके ऊपर जो पर्दे पड़े हुए हैं, (जिस्म, मन, बुद्धि, वगैरा) उनसे हटाया जाता है। यही आत्मा का दर्शन है। आत्मा और परमात्मा एक ही है। औरतों का ख़्वाब में देखना काम शक्ति की तेज़ी बताता है। उसका इलाज यह है कि जहाँ तक हो सके स्त्रियों की सोहबत से बचा जावे। मेरे गोरखपुर जाने की तारीख अभी निश्चित नहीं है। जब गोरखपुर जाऊँगा लखनऊ दो रोज ठहरूंगा और आपको सूचित कर दूंगा। अपने पिताजी और इन्द्रसेन बाबू को नमस्ते कह देना। बच्चों को प्यार। परमात्मा आपको सच्चे रास्ते पर क़ायम रखें।

शुभ चिन्तक,

श्रीकृष्ण

(3)

प्रिय भाई नमस्ते,

दुख सुख अपने ही पैदा किये हुए हैं। जब दुनियाँ की किसी चीज़ में सुख मिलता है तो आदमी उसको हासिल करने की कोशिश करता है। मेहनत करता है। अगर वह चीज मिल जाती है तो खुश हो जाता है तथा नहीं मिलने पर दुखी होता है। अगर ख्वाहिश न हो तो दुख ही न हो। ख्वाहिश के साथ दुख का होना जरूरी है। भण्डारा 25,26, 27 अक्टूबर को मनाया जायेगा। आने का कोशिश कीजिए।

शुभ चिन्तक,

श्रीकृष्ण

(4)

सिकन्दराबाद

27 मई 1968

प्रिय भाई,

खुश रहो,

आपकी चिट्ठी मिली। मैं अच्छी तरह से हूँ। इलाज चल रहा है। जिस्म से हर वक्त कोई पास नहीं रह सकता और यह तड़प मन की

है, न कि आत्मा की। गुरु का दर्शन बाहरी आँखों से नहीं होता है। उसका दर्शन दिल की आँखों पर जो छटे चक्र पर है मन को एकाग्र करके अन्दर की तरफ किया जाता है। गुरु का जिस्म नूरानी है अर्थात प्रकाशवान है जो अन्दर है। बाहरी जिस्म मिट्टी का है। बाहरी आँखों से आँख फाड़-फाड़कर देखना ग़लत तरीका है। दिल के आईने में हे तस्वीरे यार, जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली। आपने फार्म भर दिया अच्छा किया, मेहनत करो, परमात्मा करे कामयाबी हो। बाबू जी को नमस्ते बहू को आसीस।

शुभ चिन्तक,
श्रीकृष्ण

(5)

सिकन्दराबाद
09-11-1967

प्यारी बेटी,

खुश रहो,

चिट्ठी तुम्हारी मिली। दुनियाँ एक घना जंगल है। यहाँ हर क़दम पर खूंखार जानवर घूम रहें हैं। यानी दुनियाँ को लुभाने वाली चीजे हमको अपनी तरफ खेंच रही हैं। यही रास्ते का भूल जाना है। अगर गुरु या ईश्वर साथ है और उसकी याद है, और उसके कहने पर चल रहे हैं तो आसानी से रास्ता कट जाता है। और फिर अपने असली वतन को वापिस चले जाते हैं। वरना जन्म-जन्म इसी तरह भ्रमते रहते हैं। दुनियाँ की चीज़ों की ख़्वाहिश मत करो। यह सब फँसाने वाली हैं चाहे वह लड़के की ख्वाहिश ही क्यों न हो। दुनियाँ में वह खुशकिस्मत है जिसके औलाद नहीं हैं। दुनियाँ से उतना ही वास्ता रखो जितनी जरूरी है, बाकी वक्त परमात्मा की याद में लगाओ। ईश्वर तुम्हें खुश रखे।

शुभ चिन्तक,
श्रीकृष्ण

अध्यक्षीय सदुपदेश

असली परिवर्तन

असली परिवर्तन भीतर से होता है, बाहरी चौकीदारी थोड़ी देर ही काम करती हैं जब हमारा मन पूरी तरह से बदलेगा तब ही हम बदल सकते हैं, बाह्य परिवर्तन तो धोखा है भ्रमक है।

इंसान संस्कारों का एक जीता जागता नमूना है जो भी हमने कर्म किये है जो भी उनकी छाप हमारे साथ है, हमारे संस्कार उन्हीं के अनुसार बने हुए हैं और उन्हीं के कारण इस संसार में सुख–दुख भोगते हैं। यही जन्म मृत्यु का कारण बनते हैं। बिना उनसे छूटे युक्ति नहीं होती। अब सवाल यह है कि उसमें परिवर्तन हो कैसे। बनाने वाली शक्ति तो अन्तर में है – अतः बाहर में बनने बनाने से थोड़ा फर्क तो पड़ सकता है, लेकिन उसमें स्थिरता नहीं आ सकती।

इस वास्ते सत्संग में अन्तर की कार्यवाही करने को कहा गया है इसके लिये आवश्यक यह है कि अन्तर को धीरे–धीरे निर्मल कर उसके प्रवाह को पलट दें। सुरत का उलटधारा होना भी यही होता है, वो बजाय बाहर की ओर बहने के अन्तर में अपने केन्द्र की ओर बहने लगती है। ऐसा बदलना ही असली बदलना होता है। हृदय ही बदल जायेगा। जो संस्कार थोड़े बहुत बचते है वो भी गुरुकृपा से कटने लगेंगे। जब ऐसा हो जायेगा तब असली परिवर्तन आयेगा। ये परिवर्तन अगर कई जन्मों में भी आ जाता है तो बड़ी भारी बात है। बाहर की सावधानी से आया परिवर्तन दिखावटी भी हो सकता है, लेकिन अगर अभ्यास करते–करते संस्कार कटने में एक पूरा जन्म भी लग जाये तो समझना चाहिए बडी कृपा है। पूरे संस्कार न कटे और नए संस्कार न बने एवं पुराने धीरे–धीरे क्षय होते जायें। तब भी बहुत है। करना यह है कि पुराने संस्कारों का जो भण्डार है उसमें आग लगानी है, उन्हें नष्ट करना है और नए संस्कार को बनने से रोकना है।

अब आग लगाना इन्सान के तो बस का है नहीं, क्योंकि वो खुद इनमें इस कदर फँसा है कि उसका बस नहीं चलता। वर्ना अगर इन्सान

का बस चल जाता तो वो अपने आप ठीक हो जाता एवं कोशिश करके आजाद हो जाता। स्वयं का बस न चलने का कारण यह है कि हमारे ऊपर जन्म जन्मान्तर से संस्कारों का आवरण चढ़ें होने के कारण बुद्धि काम ही नहीं करती। उन आवरणों के हटाने के लिए संतमत में सत्य पुरुष (सतगुरु) सतनाम (ईश्वर का वो नाम जिससे उसकी नजदीकी हासिल हो) का सहारा लेते हैं ताकि सतगुरु की कृपा से वही सुरत की धार जो उन आवरणों में फैल गई है, प्रसारित हो जाये, वापस खिंचकर अपने केन्द्र में आ जाये तब धीरे–धीरे बगैर भारी प्रयास के आवरण झीने होते जायेगे। जैसे बिजली का तार है जब तक उसमें बिजली है वो शक्तिशाली रहता है अन्यथा बेकार। ऐसे ही ये संस्कारों के आवरण जब तक शक्तिशाली एवं विद्यमान रहते हैं तब तक सुरत की धार की बैठक उन पर रहती है। सुरत की धार जिस आवरण पर आकर ठहरती है उसे शक्ति देती है अतः वो आवरण वैसा का वैसा ही बना रहता है उस पर और मसाला चढ़ता रहता है। लेकिन अगर सुरत अन्तरमुखी हो जाए तो फिर मन को संस्कारों को प्रकाशित करने की शक्ति नहीं मिलती। शुरू में काफी मुश्किल पड़ती है। संस्कारों का जो जाल है वो अन्तर में छाया हुआ है, इसकी दीवार को खत्म करने के वास्ते अभ्यास करना चाहिये। थोड़ी अभ्यास में गहराई तक पहुँच हो जाए इसके लिए सत्संग होता है। भले ही आगे न बढ़े लेकिन जहाँ है वहाँ स्थिरता बनी रहे, नीचे न गिरे, इस वास्ते पहले पहल संतमत में गुरु के द्वारा बताया हुआ साधन अभ्यास करते है।

अतः जहाँ तक बने वहाँ तक सुमिरन, भजन और ध्यान अवश्य करना चाहिए। जिस रूप में ध्यान किया जाये वो अच्छा है। अगर शब्द नहीं आता, प्रकाश का ध्यान करें। ये भी नहीं होता। गुरु का ध्यान भी नहीं होता तो उसके द्वारा बताए शब्द नाम का उच्चारण ही करें, दिल से नहीं होता तो मुख से ही करें। ये भी न हो सके तो समय मिलने पर थोड़ा बहुत स्वध्याय ही करें। दो एक भजन ही पढ़ लिए, कुछ प्रवचन ही पढ़कर उन पर मनन किया करें। फायदा अवश्य होगा।

सतगुरु तो ईश्वर का रूप हैं दया एवं कृपा के असीम भण्डार है।

कृपा अवश्य करेंगे। लेकिन उनके प्रति प्रेम श्रद्धा विश्वास तो हो। उनका तो सबसे रिश्ता ही प्रेम का है, परम पूज्य गुरुदेव, संत शिरोमणी महात्मा श्रीकृष्ण लालजी साहब भी यही फरमाते है – ''एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता है जो केवल प्रेम करते हैं चाहे वे सज्जन है या दुष्ट मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे है, मैं उनका हूँ। वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत है।''

कितनी आत्मीयता एवं प्यार भरा पड़ा है, उपरोक्त शब्दों में। ऐसे ही किसी महापुरुष जिसमें ईश्वर के सब गुण (सत चित आनंद) मौजूद हों, की सेवा करके कैसे भी उनसे आत्मिक प्रसादी ग्रहण करनी चाहिए। उनका सत्संग करना चाहिए, ताकि हमारी सुरत अन्तर्मुखी हो जाए। ये ही प्रयास करना है। ये ही तरीका है पलटने का, इसी से इन्सान पलट सकता है। इसके वास्ते संतमत में सुरत के ही अभ्यास के तरीके रखे गए है, बल्कि यहाँ तक कहा गया है कि परमार्थ की कार्यवाही केवल वो कार्यवाही है जिसमें सुरत का उल्टाव हो। सुरत शब्द के अभ्यास को छोड़कर अन्य जो भी कार्यवाही है, संतमत के ख्याल से वह सब संसार दुनियाँ की कार्यवाही है। यहाँ तक कि सतकर्म भी परमार्थ की कार्यवाही में शामिल नहीं है।

वो बात और है कि स्वभाव ही अगर सत का बन जाए, बाकी वो समस्त कार्यवाही जो फल की इच्छा से की जावे चाहे वो सत की ही क्यो न हो स्वार्थ में ही शामिल की जावेगी।

अतः उनसे (सतगुरु) आने वाली कृपा की धार (फैज़) अन्तर में ग्रहण करनी चाहिए, और यही काम गुरुजन करते हैं कि अपनी स्वयं की तवज्जोह शिष्य की तवज्जोह में मिला देते है, तो जहाँ तक उनकी पहुँच होती है वहाँ तक का फायदा शिष्य को होता है अर्थात सारा काम तवज्जोह का है। सत्संग में गुरुजन की ये ही कोशिश रहती है कि किसी तरह शिष्य की सुरत अंग बरामद हो जावे और उसकी ऊपर की लोकों में चढ़ाई हो।

अतः जितना हो सके सतगुरु की दया एवं प्रेम के सहारे अपनी सुरत को ऊपर की ओर ले जाना चाहिए। पलटाव आपसे आप होने

लगेंगे। आवश्यकता है अन्तरमुखी होने की।

(1) असली परिवर्तन – अन्तर का परिवर्तन (आत्म परिवर्तन)
(2) असली प्राप्ति – आन्तरिक गुणों की प्राप्ति,
(3) असली आनंद – अन्तर का आनंद (जिसके पाने पर किसी अन्य की ख्वाहिश न हो।

मालिक तेरी रजा़ रहे और तू ही तू रहे,
मुझको तेरी तलब व तेरी आरजू रहे।

• • •

श्री जयनारायण गौतम-श्रद्धांजली

ज्ञान और कर्म, श्रद्धा और प्रेम, निष्ठा और समर्पण, इन सभी का विशेष ढंग से समन्वय यदि पूज्य गुरुदेव के बाद हमारे रामाश्रम सत्संग में किसी के व्यक्तित्व में यदि देखने को मिलता है तो वे हैं परम आदरनीय श्री जयनारायण गौतम जी।

पूज्य दादागुरु जी के समय से ही हम सब भाई बहनों को गौतम ताउ जी का सानिध्य प्राप्त हुआ और उसी में अनेक मूल्यवान उपलब्धियाँ भी मिलीं। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान का अगाध भण्डार उनके पास था। अपने इस अमूल्य ज्ञान सागर के प्रकाश से उन्होंने अनेक लोगों को बहुत लाभ दिया, समाधान दिया और जिज्ञासुओं को आगे बढ़ने का मार्गदर्शन भी दिया। वेदों से लेकर श्रुति स्मृति, उपनिषद् और गीता, रामायण आदि सभी की झलक उनके ज्ञान कोष में मिलती है।

भंडारों में वे घूम–घूमकर सभी की कार्य विधियाँ देखते थे और जहाँ व्यवस्था में कुछ कमी होती वहाँ आवश्यकतानुसार नम्रतापूर्वक निवेदन भी कर देते थे। हँसमुख स्वभाव के साथ इतने मिलनसार थे कि जहाँ बड़ों के समक्ष नतमस्तक रहते वहीं महिलाओं और छोटी उम्र के बालक–बालिकाओं के साथ इतना घुल–मिल जाते थे कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि इस हँसने बोलने वाले व्यक्तित्व में श्रद्धा और भक्ति का सागर हिलोरें ले रहा है। सत्संग का परिचय इतनी सरलता से देते थे कि हम सब हैरान हो जाते थे। महापुरुषों और संतों के विषय में बातें करते, घटनाएं सुनाते और फिर कह बैठते थे कि देखिये बस यही तो सत्संग हो रहा है।

आज पूज्य गौतम ताउजी हमारे बीच नहीं है। रामाश्रम सत्संग और 'राम–संदेश' पत्रिका उनकी अमूल्य देन के प्रति सदा आभारी रहेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि हम सब सत्संगी भाई–बहन उनसे प्राप्त प्रेरणा को कर्ममय जीवन में सार्थक करने का प्रयत्न करें। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजली होगी।

– डा. शक्ति कुमार सक्सेना

संतोपदेश

प्रेम और विरह

कोई तो बात शम्मा के जलने में थी जरूर।
जिस पर निसार हस्तिये परवाना हो गये।।

संतजन, गुरुजन, जलती हुई शम्मा (दीपक) होते हैं जिन अधिकारी की उनके पास परमार्थी धरोहर होती है वे दूर दूर से दौड़े चले आते हैं और उन पर कुर्बान हो जाते हैं। अपना आपा (Ego) उनके प्रेम की मस्ती में जलाकर खाक कर देते हैं। परवाना नहीं रहता, शम्मा ही शम्मा रह जाती है – मैं नहीं रह जाता – तू ही तू रह जाता है। यही है जीवन का असली ध्येय और इसी की प्राप्ति के लिए सारे वेद किताबें बने हैं। प्रेम ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम – यही चैतन्य देव का कीर्तन था, यही गोपी–कृष्ण रास लीला थी और सब भक्तों का यही सन्देश है – प्रेम जगत में सार और कुछ नहीं है।

प्रेम में मादकता होती है। वह मादकता सरापा (सिर से पैर तक) होती है। बाहरी लक्षण सबको दिखते हैं, आँखों में आँसू, जुबान पर आह के सिवाय कोई शिकवा नहीं। रंग जर्द (पीला), न भूख, न प्यास, न रात को नींद। बदन तक का होश नहीं होता। एक ही लौ लगी रहती है अपने प्रीतम से मिलने की। लैला–मजनू, शीरी फरहाद, हीर–रांझा, ढ़ोला–मारू इत्यादि प्रेमी–प्रमिकाओं के अफसानों से किताबें भरी पड़ी हैं। जब इश्के मजाज़ी (भौतिक प्रेम) में इतनी मादकता है इश्के हक़ीक़ी (ईश्वर प्रेम) की मादकता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। केवल प्रेमी भक्तों की आशिक मिज़ाज मुरीदों की बानी से उस मादकता की थोड़ी सी झलक सी मिलती है। उसमें उनकी विरह वेदना का कारण चीत्कार सुनाई देता है।

पाना ज्यों पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिंड रोग।
छीने लॉघन मैं किया रे, राम मिलन के योग।।

उस प्रेम को अपने अन्तर में पैदा करो। ईश्वर के चरणों में गुरु चरणों में प्रगाढ़ प्रेम पैदा हो जाये। प्रेम की एक ही चिंनगारी संस्कार रूपी घास

के ढेर को जलाकर भस्म बना देती है। प्रेम में कोई बंधन बाधक नहीं होते। गोपियां कृष्ण के प्रेम में मतवाली घर बार, अपने पति, सबको भूलकर अपने प्यारे कृष्ण कन्हैया के पास दौड़ी चली जाती थीं। कोई सांसारिक बन्धन उन्हें रोक नहीं सकता था। ऐसे प्रेम में विकलता होती है और वही विकलता अपने प्रीतम से मिला देती है। इस विकलता का दूसरा नाम विरह है। विरह में उन्माद है।

उन्नमाद सो रोबई हॅमई, ऑसू धरती मोती खसई।
जियत रहई घ्यान के बाह्यं ना तो होत मन पल नही।।

ऐसा प्रेमी दर्शन मात्र के लिए जीता है। प्रीतम से मिलने की आस में लौ लगाये रहता है। सन्तों का यही प्रेम मार्ग है। सूफ़ियों का यही इश्के हक़ीक़ी है। इस प्रेम मार्ग में प्रेम के साथ प्रियतम भी विकल रहता है। जितना प्रेमी भक्त ईश्वर से मिलने के लिए उतावला होता है, जितना शिष्य गुरु में लय होने के लिए व्याकुल होता है, वह चाहता है कि सबके सब मुझ जैसे हो जाये। परन्तु बाधक होते हैं पूर्व जन्म के संस्कार जो बिना भोगे नहीं कटते। प्रेम में, विरह में और उसकी व्याकुलता में वे शीघ्र कट जाते हैं और तभी एक दूसरे में लय हो जाते हैं। इसी को सूफ़ियों में फ़ना कहते हैं। जब फ़ना अपनी सम्पूर्ण अवस्था को प्राप्त होती है उसे विसाल कहते हैं।

यह प्रेम स्वयं पैदा नहीं होता। यह तो सन्तों के चरणों में बैठने से गुरुकृपा से प्राप्त होता है। सदाचार से और सत्संग से पाला पोसा जाता है और कामनाओं वासनाओं के त्याग से उत्पन्न होता है। सूफियों में गुरु को साक़ी (शराब पीलाने वाला, कलोल) कहकर भी संबोधित करते हैं। अपने नेत्रों से वह प्रेम की मदिरा पिलाता है। उसके मादक नयनों से प्रेम की मदिरा पीने के लिए मुरीद (शिष्य) मतवाले बने रहते हैं और कीमत क्या देना चाहते हैं? अपना मन।

अरे अरे कलावर पियारे, मदिरा ढ़ारै नैन तुम्हारे।
एक पियाला भर मद दीजै, मोल पियारे मानस लीजै।।

यह मन ही संस्कारों की जड़ है। यही कामनाओं, वासनाओं का घर है। यही पर्दा है प्रेमी और प्रीतम के बीच का। इसी का नाम शैतान है। यही रावण है जिसके दस सिर और बीस भुजाऐं हैं। जितने काटे जाते हैं उतने ही बढ़ते जाते हैं। हवा को मुट्ठी में बांध लेना भले ही आसान हो, परन्तु इसे जीतना महा कठिन काम है। यह ग्रन्थि है जो जीवात्मा और ईश्वर के बीच में पड़ गई है। बिना इसके छूटे दोनों का मिलन नहीं हो सकता। इसके अनेकों उपाय अलग–अलग मतमातान्तरों में अलग अलग ढंग से बताये गये है। परन्तु सबसे सुगम और सबसे छोटा रास्ता प्रेम का है। प्रेम से विरह और विरह से मिलन।

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरत को, पंच पुकारे पीव।।

सांसारिक दुखों को मिटाने की, जीवन मरण के चक्र से मुक्त होने की कुंजी एकमात्र ईश्वर प्रेम है। प्रेम में ही जीवन की मधुरता है। ईश्वर प्रेम रूप है। जो प्रेम के रास्ते पर चलेंगे वे स्वयं प्रेम रूप हो जायेंगे। फिर उनमें और ईश्वर में भेद कैसा?

लाली मेरे लाल की, जित देखी तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

• • •

संतमत में भक्ति

भक्ति हर प्रकार की सही और सार्थक है

आर्य समाजी वेदों की भक्ति करते हैं, सिक्ख भाई गुरु ग्रन्थ साहब की भक्ति करते हैं। परन्तु इनमें भी सार है। भक्ति भाव से जब किसी पवित्र पुस्तक को आप पढ़ते हैं तब आपको पता लगता है कि यह भक्ति भी ठीक है। कोई भी भक्ति साधना का तरीका ग़लत या बुरा नहीं है।

वेदों के क्रिया कांड को पढ़कर आप यदि यह समझ लें कि इसमें कुछ विशेष नहीं, यह तो बस हवन–यज्ञ आदि कर्मकांडी क्रियाएं सिखलाते है, सो उचित नहीं है। जब वेदों के आध्यात्मिक, गहन/रहस्यमय साहित्य को जिनमें उपवेद, आगम, निगम आदि अनेकों पुस्तकों का भंडार है–उसी में मुख्यतः उपनिषद भी आते है – उनको पढ़ेगे तो आपको पता चलेगा कि भारत की सनातन संस्कृति कितनी ऊँचाइयों तक ले जाती है। वास्तव में उन सब ग्रंथों का सार यही है कि उनके पढ़ने से, मनन और अनुपालन करने से व्यक्ति ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है। अधिकांश ऋषियों ने इन मंत्रों को पढ़ने, मनन करने और अपनाने से ईश्वर की प्राप्ति की है तो हम कैसे ना कहे कि वेदों की भक्ति सही है। गुरुवाणी में भी ऐसा सन्दर्भ आया है जब कीर्तन होता है तो यह गाया जाता है।

हर प्रकार से की गई भक्ति सही और सार्थक होती है। हमें किसी की निन्दा आलोचना या प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए। प्रतिक्रिया जब भी करें अपनी करें। आदमी कितना भी बुरा क्यों न हो, महापुरुष कहते है उसमें भी, उसकी आत्मा के रूप में परमात्मा के दर्शन करें। हज़रत ईसा कहते हैं यदि मानव रूप में ईश्वर के दर्शन नहीं होते तो आप कहीं भी ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकते। मन्दिर में आप उपहार लेकर आए हैं और यदि आपके मन में किसी के प्रति घृणा है तो अपना उपहार वापस ले जाइए। पहले उस व्यक्ति को अपना मित्र बनाइए, उसमें प्रभु के दर्शन करिये फिर यहाँ आए। कितनी ऊँची होगी भक्ति की ऐसी स्थिति ? भक्ति केवल दिखावा या दर्शन नहीं है।

कई महापुरुष ज्ञान साधना बताते हैं। वे भी जाने–अनजाने अपने अनुयाइयों द्वारा ज्ञान के प्रति निष्ठा के रूप में भक्ति कराते हैं। आप किसी संस्था में जाकर देख लें, बिना भक्ति के, बिना प्रेमा भक्ति के मन की जो शक्ति है, साधनों के लिए जिसकी अति आवश्यकता है, उसमें कोमलता नहीं आयेगी। यदि किसी के दुख को देखकर आपके हृदय में दुख उत्पन्न नहीं होता तो आप साधना करने के सच्चे अधिकारी नहीं है। आध्यात्मिक साधना की नीव है। और संतमत में उस भक्ति या साधना का एक ही आधार है.... और वह है गुरु।

गुरु की भक्ति क्या है? गुरु का आचार, व्यवहार देखना, विचार सुनना ओर उनका अनुकरण करना। और गुरु को भगवान मानकर उसके पास बैठकर या ख्याली तरीके से गुरु का ध्यान करके, उसके हृदय से आत्मा का जो प्रकाश निकल रहा है उसी प्रकाश को अपने हृदय में बसाना सर्वोत्तम भक्ति है,। धीरे–धीरे साधक आत्मा स्वरूप हो जाता है वह स्थूल रूप परमात्मा रूप हो जाता है, धीरे–धीरे अभ्यास में प्रगति करते हुए – साधक की आत्मा अन्तिम आयाम में सरलता से परमात्मा में लय हो जाती है। यही विशेषता है गुरुमत की या संतमत की, नाम चाहे कोई भी रख लीजिए। प्रेमाभक्ति ही इस पंथ का आधार है – एक मजबूत आधारशिला है।

● ● ●

Form of Declaration
(Under Section 5 of press and registration book Act 1867)

I (Dr.) Shakti Kumar Saxena declare, I am Publisher & Printer of RAM SANDESH to be published from Ghaziabad and printed at Noida and that particulars of the said Newspaper is given here under are true to the best of my knowledge and belief:

1)	Title of the Newspaper	:	**RAM SANDESH**
2)	Language in which it is to be published	:	**Hindi**
3)	Periodicity of the Publication	:	**Bi-Monthly**
4)	Retail Selling Price of Publication		
a)	If the Newspaper is for free distribution, Please state that it is for free distribution	:	**For Free Distribution**
b)	If it has only Annual Subscription and no Retail price, please state the Annual Subscription	:	**No Subscription**
5)	Publisher's Name	:	**Dr. Shakti Kumar Saxena**
	Nationality	:	**Indian**
		:	**Address: SA/36, Shastri Nagar, Ghaziabad 201003**
6)	Place of Publication	:	**Angkor Publishers (P) Ltd.**
	(Nationality)	:	**Indian**
	(Address)	:	**B-66, Sector 6, Noida-201301**
7)	Printer's Name	:	**Dr. Shakti Kumar Saxena**
	(Nationality)	:	**Indian**
	(Address)	:	**SA/ 36, Shastri Nagar, Ghaziabad -201003**
8)	Name of Printing Press where printing is to be Conducted and the true and precise description of premises where the Press is installed	:	**Angkor Publishers (P) Ltd. B-66, Sector 6, Noida-201301**
9)	Editor's Name	:	**Dr. Shakti Kumar Saxena**
	Nationality		**Indian**
	Address	:	**SA/36, Shastri Nagar, Ghaziabad -201003**
10)	Owner's Name	:	**Dr. Shakti Kumar Saxena**
i)	Please state particulars of individuals of the	:	**RAMASHRAM SATSANG (REGD).**
	Firm, Joint Stock, Company, Trust, Co-operative or		**9, Ramakrishna Colony, G T Road,**
	Society, or association which own the Newspaper		**Ghaziabad-201003 (UP)**
ii)	Please state whether the owner owns any other publication and if so its name periodicity, language & place of Publication	:	**None**
11)	Please state whether Declaration is in respect of:		
	a) A New Newspaper or		
	b) In case Declaration falls under in (1)	:	**No Change**
	c) An existing newspaper the reason for filling the fresh Declaration	:	**YES**

Dr. Shakti Kumar Saxena
(Publisher & Editor)

राम संदेश के नियम

1) आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

2) राम-संदेश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छांट करने अथवा छापने, या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।

3) राम संदेश का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। चन्दा फ़िलहाल 20/- (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर जनवरी-फ़रवरी के अंत तक अवश्य भिजवा दें।

4) पत्र व्यवहार करते समय कृपया अपना ग्राहक नम्बर लिखें और पता लिखा कार्ड या लिफ़ाफ़ा भी अवश्य भेजें। पता बदलने की सूचना, डाकघर के पिन कोड सहित निम्न पते पर :-

डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

कृपया तुरन्त भेज दें - अन्यथा आपकी प्रति वापस आ जाती है या 'विलीन' हो जाती है।

5) राम संदेश के समस्त ग्राहकों की प्रतियाँ बड़े ध्यान से हर बार नौएडा, सैक्टर 34 के डाकघर में पोस्ट की जाती हैं। यहाँ तक की ज़िम्मेदारी हमारी है, आगे की नहीं। यदि 1,3,5,7,9 और 11वें महीने के अंत तक भी राम संदेश की प्रति न पहुँचे तो कृपया उसकी सूचना **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नवयुग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर अवश्य दें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस
9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड,
गाज़ियाबाद - 201009

सम्पादकीय पता
डा. एस. के. सक्सेना
9 नवयुग मार्केट,
गाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

PERIODICAL

ग्राहक संख्या, नाम, पता

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नौएडा-201301